INTERNATIONAL RESEARCH FELLOWS ASSOCIATION

Impact Factor – 6.625 ISSN – 2348-7143

INTERNATIONAL RESEARCH FELLOWS ASSOCIATION'S

RESEARCH JOURNEY

Multidisciplinary International E-Research Journal

PEER REFREED & INDEXED JOURNAL

October-2019 Special Issue – 200

Cotemporary Problems in India and Remidies

Guest Editor :
Dr. R. V. Shikhare
Principal
R. B. Attal Arts, Science & Commerce College,
Georai, Dist. Beed (M.S) India

Associate Editors -
Mr. H. B. Helambe
Mr. B. S. Jogdand
Mr. R. B. Kale
Mr. S. S. Nagare
Mr. R. B. Pagore

Chief Editor -
Dr. Dhanraj T. Dhangar (Yeola)

This Journal is indexed in :
- Scientific Journal Impact Factor (SJIF)
- Cosmoc Impact Factor (CIF)
- Global Impact Factor (GIF)
- International Impact Factor Services (IIFS)

For Details Visit To : www.researchjourney.net

SWATIDHAN PUBLICATIONS

65	आतंकवाद : समस्या तथा नियंत्रण	संदीप गोरे	261
66	समकालीन हिंदी कविता में स्त्री संवेदना	संतोष नागरे	265
67	हिंदी लेखिकाओ के उपन्यासों में अभिव्यक्त स्त्री विमर्श	डॉ. सुनिल डहाले	271
68	कौसल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में दलित नारी जीवन	डॉ. रजनी शिखरे, अशोक उघडे	275
69	विनय मिश्र की ग़ज़लो में बाजारवाद	डॉ. रजनी शिखरे	278
70	वाहरू सोनवणे की कवितांएँ ('पहाड हिलने लगा है' के संदर्भ में)	संतोष नागरे	281
	मराठी विभाग		
71	पर्यावरण प्रशासन : काळाची गरज	डॉ. व्ही. पी. सांडूर	287
72	भारतीय लोकशाही मधील 'भ्रष्ट्राचार' एक प्रबळ समस्या	डॉ. अंकुशराव चव्हाण	290
73	शेतकऱ्यांच्या आत्महत्या	भाग्यश्री पानढवळे	293
74	बीड जिल्ह्यातील इमारत बांधकाम कामगारांच्या आर्थिक स्थितीचा अभ्यास	एस. ई. भोसले	298
75	नक्षलवाद एक सामाजिक समस्या : सामाजशास्त्रीय अभ्यास	डॉ. दत्तात्रय भूताळे	304
76	शेतकरी आत्महत्या भारतीय समाजासमोरील अव्हान व उपाय योजना	टी. एस. बिडवे	308
77	नक्षलवादी चळवळीची विचारसरणी	डॉ. रजनी बोरोळे	312
78	भारतीय राजकारण आणि धर्म, जात, भाषा	डॉ. देविदास नरवाडे	318
79	मॉब लिचींग : एक गंभीर समस्या	डी.एन. रिठे	321
80	भ्रष्ट्राचार : एक विवेचन	डॉ. डी.के. ढास	325
81	दहशतवाद	डॉ. बी.एस.चव्हाण	330
82	मानसशास्त्र आणि दहशतवाद : एक आकलन	डॉ. अतुल पवार	335
83	भ्रष्टाचार : कारणे व उपाय	डॉ. भगवान वाघमारे	338
84	नक्षलवाद : भारतातील कडव्या साम्यवादी संघटनांची सशस्त्र चळवळ	डॉ. भारत बिचितकर	342
85	मराठवाड्यातील सिमांत शेतकऱ्यांच्या समस्या आणि त्यावरील उपाय	गोविंद काळे व दीपक भारती	347
86	शेतकरी आत्महत्या : कारणे आणि उपाय	डॉ. दत्तात्रय डुंबरे	350
87	नक्षलवादी चळवळीची विचारधारा आणि व्यवहार	डॉ. एस. पी. घायाळ	353
88	मराठी कादंबरी आणि अर्थकारण : विशेष संदर्भ 'फेसाटी'	डॉ. गोविंद काळे	359
89	सामुहिक हिंसाचार	डॉ. विठ्ठल जाधव	363
90	ब्रिटिशांच्या कायद्याचा भारतीय समाजावर झालेला परिणाम	सचिन पांडव, डॉ. लक्ष्मीकांत जिरेवाड	368
91	वनतोडीमुळे उदभवणाऱ्या समस्यांचे अध्ययन (संदर्भ : पवन तालुक्यातील मिन्सी या गावातील कुटुंब)	ज्योती नाकतोडे	373
92	पर्यावरणविषयक मुद्दा	डॉ. काकासाहेब पोफळे	389
93	स्वयंसहाय्यता गट आणि सशक्तीकरण : एक अवलोकन	डॉ.संतोष काकडे	383
94	शेतकऱ्यांच्या आत्महत्या	डॉ.काशिनाथ पल्लेवाड (सावळीकर)	387
95	सामाजिक समस्या आणि नव्वदोत्तरी मराठी कविता	डॉ. समिता जाधव	390
96	भारतातील दारिद्र्य	डॉ. शिवाजी पाते	395
97	जेष्ट नागरिकांच्या समस्यांचे सामाजिक निराकरण	डॉ. सुधीर येवले	400
98	भ्रष्टाचार : भारतीय समाजासमोरील एक ज्वलंत समस्या	डॉ. सुनंदा आहेर	404
99	पर्यावरण आणि भारतीय शेती	डॉ. योगेश पाटील	409
100	समकालीन राजकीय परिस्थिती आणि विरोधी पक्षाची भूमिका	डॉ. भुजंग पाटील	412

'RESEARCH JOURNEY' International Multidisciplinary E- Research Journal
Impact Factor - (SJIF) – 6.625, (CIF) - 3.452(2015), (GIF)–0.676 (2013)
Special Issue 200 : Contemporary Problems in India and Remidies
ISSN : 2348-7143
October-2019

वाहरु सोनवणे की कविताएँ
('पहाड़ हिलने लगा है' के संदर्भ में)

संतोष नागरे
सहा.प्रा.-हिंन्दी विभाग
र.भ. अट्टल महाविद्यालय,
गेवराई जि.बीड

वैश्वीकरण से उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति से भारतीय भाषा, बोलियाँ, परम्परागत कलाएँ, नृत्य, गीत, संगीत आदि विलुप्त होने के कगार पर है। वैश्वीकरण के इस दौर में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की घुसपैठ के कारण आदिवासी समाज का अस्तित्व खतरे में आ गया है। आदिवासी इस देश के मूल निवासी है तथा उनका अस्तित्व पूर्णत: जंगल पर निर्भर है। उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की नई अर्थनीतियों के सूत्रधारों ने अपने स्वार्थ सिध्दि के लिए, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने हेतु आदिवासियों के जंगलों को उजाड़ना प्रारंभ किया। विकास के नाम पर इस देश के मूल निवासी आदिवासियों को जल, जमीन और जंगल से बेदखल कर, उनकी उपजीविका के समस्त साधन छिनकर उन्हें विस्थापन की त्रासदी से गुजरने पर विवश किया जा रहा है। इसी विवशता ने समकालीन आदिवासी साहित्य को जन्म दिया।

समकालीन हिंदी कवि जहाँ एक ओर अपनी रचनाओं के माध्यम से शोषणकारी व्यवस्था द्वारा जंगल उजाड़ने की नीतियों की आलोचना करते हैं वहीं दूसरी ओर उसे बचाए रखने के लिए संघर्षरत आदिवासियों के दर्द को बयान करते हैं। इसलिए आदिवासी काव्य में वेदना से उपजा विद्रोह, आदिपुत्रों को वन-जंगलों, गिरिकुहरों में कैद करनेवाली व्यवस्था का विरोध, अपनी उज्ज्वल परम्परा के प्रति अभिमान, सांस्कृतिक संघर्ष में बलिदान देनेवालों के प्रति करुणा का भाव, जंगल के मौन को तोड़ने का संकल्प तथा अँगूठा काटनेवाली व्यवस्था से सावधान रहने का इशारा भी है। डॉ. विनायक तुमराम इस संदर्भ में कहते हैं, "वेदना है, विद्रोह है और अपने ढंग की अभिव्यक्ति भी है। आदिपुत्रों को वन-जंगलों, गिरिकुहरों में कैद करनेवाली व्यवस्था के प्रति जान-बूझकर किया गया गया नकार है। इसमें 'सांस्कृतिक संघर्ष में बलिदान किए जानेवाले परिवारों से हमारा रक्त सम्बन्ध' जैसे भावुक सुर के साथ ही अपनी वैचारिक योग्यता के बल पर जंगल के मौन को तोड़ने की सौगन्ध भी है। आदिमों का मानसिक बल देने का वैचारिक संकेत तो इसमें है ही। अँगूठा काटनेवालों से सावधान रहने का इशारा भी है।"[1]

आदिवासी समाज को केंद्र में रखकर काव्य सृजन करनेवाले समकालीन कवियों में महादेव टोप्पो, हरीराम मीणा, भुजंग मेश्राम, निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, वाहरु सोनवणे आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वाहरु सोनवणे महाराष्ट्र के भील आदिवासी समाज को लेकर काव्य सृजन करनेवाले पहली पीढ़ी के शीर्षस्थ कवि हैं। आपने अपनी मातृभाषा भिलोरी में सशक्त लेखन कर आदिवासी समाज जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला। आपका मराठी भिलोरी भाषा में लिखा गया प्रथम काव्य-संग्रह 'गोधड़' 1987 में प्रकाशित हुआ, जिसे विभिन्न पुरस्कारों से सन्मानित किया गया। इस चर्चित कविता-संग्रह का हिंदी अनुवाद निशिकांत ठकार जी ने 'पहाड़ हिलने लगा है' शीर्षक से किया। जो 2009 में शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्युटर्स, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत रचना के केंद्र में महाराष्ट्र के नंदुरबार जिले का भील आदिवासी समाज है। प्रस्तुत रचना में शोषणकारी व्यवस्था की शोषण चक्की में निरंतर पिसते आ रहे तथा शोषणमुक्ति के लिए संघर्षरत आदिवासी समाज का यथार्थ चित्रण है। वाहरु सोनवणे संघर्ष के माध्यम से पहाड़ रुपी समाज की जड़ता को तोड़ते हुए सामाजिक समता तथा परिवर्तन की दिशा की ओर कदम बढ़ाते हैं। अत: प्रस्तुत रचना का शीर्षक अत्यंत सार्थक है। डॉ.रमणिका गुप्ता इस संदर्भ में ठीक ही कहती है, " 'गोधड़' के माध्यम से वाहरु सोनवणे ने जहाँ आदिवासी समाज की पीड़ादायक स्थितियों का वर्णन किया, वहीं समाज में आ रही चेतना को भी

शब्द दिये हैं, जिसने बदलाव के सपने को रुप दिया। समाज में एक थरथराहट पैदा हुई, जिसने नई राहें बनाई और वे निकल पड़े उन राहों पर समाज के सपनों को सच करने। उनकी कविताओं में व्यवस्था का विरोध कई प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त हुआ है। ये प्रतीक आम-आदमी की जिन्दगी में रोजमर्रा नजर आते हैं, पर किसी का ध्यान उनकी तरफ नहीं जाता। वाहरु सोनवणे का कवि मन उन मामूली चीजों में भी व्यवस्था की जकड़न को महसूस करता है और तोड़कर उनसे बाहर निकलना चाहता है।"[2]

वाहरु सोनवणे आदिवासी समाज जीवन को केंद्र में रखकर काव्य सृजन करनेवाले समकालीन हिंदी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। भील आदिवासी समाज में जन्म लेने की पीड़ा को आपने स्वयं भोगा है। समाज द्वारा उपेक्षा, अपमान, तिरस्कार, उत्पीड़न से मिले जख्म ही कवि को इंसानियत के रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करते रहे। 'जख्म' ही कवि को संवेदनशील बनाकर जीवित रखते हैं। वाहरु सोनवणे कहते हैं,-

"जख़्म लिए जीता हूँ मैं / जख़्म ही रखते हैं मुझे जिन्दा
इन्सानियत की राह- / जख़्म ही दिखाते हैं मुझे।"[3]

आजादी के सत्तर साल बाद भी आदिवासी समाज अपनी प्राथमिक जरुरतों को पूर्ण नहीं कर पा रहा है। रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा तथा स्वास्थ सुविधाएँ उस तक नहीं पहुँच पायी। आदिवासियों के विकास को लेकर मंच पर चर्चाएँ तो बहुत होती है, लेकिन आ़दिवासियों के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं होता। मंच पर बैठे तथाकथित तारणहार ('वे') और मंच के सामने जमीन पर बैठे आदिवासी ('हम') के बीच की खाई दिनों - दिन बढ़ती जा रही है। आदिवासी समाज के विकास के प्रति प्रतिबध्दता जतानेवाली नकली तारणहारों की पोल खोलते हुए वाहरु सोनवणे 'मंच' कविता में कहते हैं,-

"हम मंच पर गये ही नहीं /और हमें बुलाया भी नहीं
उंगली के इशारे से / हमें अपनी जगह दिखाई गयी
हम वहीं बैठ गये, / हमें शाबाशी मिली
और वे मंच पर खड़े होकर
हमारा दुख हमसे ही कहते रहे।
'हमारा दुख हमारा ही रहा
कभी उनका हो ही नहीं पाया'.....।"[4]

आदिवासियों के विकास का दावा करनेवाले तथाकथित वर्ग ने अपनी स्वार्थ सिध्दि के लिए उनकी आवाज और शंकाओं को बड़ी बेरहमी से कुचला। 'वे' और 'हम' के माध्यम से संबंधों के दोगलेपन पर कवि ने तीखा प्रहार किया है। 'हरियल जंगल में' कविता जंगल की दुरावस्था को बयान करती है। महानगरों के बढ़ते साम्राज्य ने आदिवासियों के जंगल में घुसपैठ करते हुए उनके जल, जमीन और जंगल पर अपना अधिकार जताकर उनकी उपजीविका के समस्त साधन छीन लिए। परिणामत: आदिवासी क्षेत्र में कुपोषण की समस्या विकराल रुप धारण कर चुकी है। वाहरु सोनवणे जंगल से कंदमूल गायब होने से चिंतित है। वाहरु सोनवणे कहते हैं,-

"हरे-हरे जंगलों में / झरे हुए / सागौन के पत्तों सरीखी
टूटी - फूटी वे झोंपड़िया ! / जंगल के जंगली आदमी
कंदमूल खानेवाले / पर / न बचा कंद और न बचा मूल।"[5]

आदिवासियों की टूटी-फूटी झोपड़ियाँ तथा मधुमक्खियों के छत्ते की तरह पहाड़ के छोर पर लटकते देहात की 'घायल तस्वीर' देश की व्यथा-कथा को बयान करती है। 'रोजगार योजना की कतार में' इस कविता में सरकारी योजनाओं की विफलताओं से उपजा आक्रोश है। 'पालामांडी बस्ती' पेट भरने की खातिर किये जानेवाले संघर्ष की गाथा है।

'अनाज' कविता श्रम के अवमूलयन को दर्शाती है। जिससे आम-आदमी दो वक्त की रोटी का अनाज भी नहीं जुटा पा रहा है। बित्ते भर पेट की खातिर मरघट में पहुची हड्डियाँ कृषिप्रधान देश के किसान की व्यथा को बयान करती है। वाहरु सोनवणे 'घास का खलिहान' कविता में कहते हैं-

"घास की क्यारी खोदते-खोदते / दिन ढल गया
अभी तक रोटी का अता-पता नहीं
खोदते-खोदते / मरघट में पहुँच गयी हड्डियाँ
बित्ते भर पेट की खातिर।"[6]

आजादी के बाद आम और खास आदमी के बीच की दूरी दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है। एक ओर महानगरीय सभ्यता की चकाचौंध से चमकता शाईनिंग इंड़िया है तो दूसरी ओर अंधकार में प्रकाश की किरण खोजता क्राईंग इंड़िया। इस देश में लोगों का रस पीने वाले गन्नों का प्रमाण हर क्षेत्र में बढ़ता जा रहा है। इस लूट संस्कृति के चलते मूल्य-व्यवस्था टूट रही है। मानवता, समानता का दावा करनेवाली व्यवस्था के पक्षधरों की अमानवीयता की पोल खोलते हुए 'और' कविता में वाहरु सोनवणे कहते हैं,-

"गन्ने का रस पीने वाले लोग / और
लोगों का रस पीने वाले गन्ने।"[7]

गन्ने यहाँ शोषकों के प्रतीक रुप में आये हैं। जो हर क्षेत्र में हमें दिखाई देते हैं। पुरुषप्रधान व्यवस्था भी इसी गन्ने का प्रतिरुप है, जो सदियों से स्त्री का शोषण करती आयी है। पुरुषप्रधान व्यवस्था की नज़र में स्त्री सिर्फ एक उपयोग की चीज है। इसी रुग्ण मानसिकता के कारण ही स्त्री भ्रूण हत्या, छेड़छाड़, बलात्कार, अपहरण जैसी घटनाएँ घटित होकर सामाजिक स्वास्थ बिगड़ रहा है। 'औरत', 'पालामांडी बस्ती', 'देवदासी' तथा 'आँसू औरत ही क्यों बहाती है?' कविताओं के माध्यम से वाहरु सोनवणे स्त्री जीवन की दास्तान बयान करते हैं। साड़ी की तरह थिगलियाँ-जोड़ते-जोड़ते जिन्दगी जीना नारी जीवन की नियति बन गयी है। स्त्री-पुरुष समानता का ढोल पिटनेवाले पाखंड़ियों की दोगलीनीति का पर्दाफाश करते हुए 'औरत' कविता में वाहरु सोनवणे कहते हैं,-

"एक ऐसी चीज / जिसे घाट में, बाट में
जहां मिले थाम लो / जब जी चाहे अंग लगा लो
पूरी हुई हवस तो त्याग दो / न चीख न पुकार !
नयी साड़ी, नयी बहु / ससुर के पाँव पड़ती है
फट जाती जर्जर होकर /साड़ी के संग-संग
और फिर-थिगलियाँ जोड़ते - जोड़ते जीती
जिंदगी भरं !"[8]

स्त्री न जंगल में सुरक्षित है, न घर में, न शहर में, न मंदिर में। 'देवदासी' कविता के माध्यम से वाहरु सोनवणे धर्म की आड़ में स्त्रियों के साथ किय जानेवाले दुष्कर्म की पोल खोलते हैं। महाराष्ट्र मे देवदासी एक धार्मिक तथा सामाजिक प्रथा है। जिसके तहत लड़कियों को मुर्गियों- बकरियों के माफिक अर्पण किया जाता है। बाद में इन्हीं लड़कियों को मठ-मंदिरों के महंतों की वासना का शिकार होना पड़ता है। स्त्री को भगवान के रुप में पूजनेवाले उसके ठेकेदार ही उसके जिस्म को गिध्द-कौओं की भाँति नोंचते हैं। ऐसे धर्म तथा धर्म के पाखंड़ियों पर प्रहार करते हुए वाहरु सोनवणे कहते हैं,-

"एक मुल्क / जहाँ देवता को देते हैं
लड़कियों का चढ़ावा / मुर्गियों - बकरियों के माफिक

जवान होते-होते / बाँहों में भरो
कोने कछाले ले- जाकर / 'वापर' लो, कौन देखता है?
घर है न दुआर / देवताओं की बकरियां ये
देवदासी कहते हैं इन्हें !"[9]

आजादी के सत्तर साल बाद भी आदिवासी जनजातियों के नाम अपराधियों की सूची में आज भी हमें देखने को मिलते हैं। अंग्रेज जाने के बाद भी यह कलंक उनके माथे से मिट नहीं पाया। परिणामतः कानून व्यवस्था आज भी उन्हें अपराधी की नज़र से ही देखती है। आदिवासियों की जमीन हड़पने के लिए उन्हें तरह-तरह के प्रलोभन दिये जाते हैं और न मानने पर झूठे मुकदमे दायर कर उन्हें फसाया जाता है। 'कोर्ट' कविता के माध्यम से वाहरु सोनवणे ने बेगुनाहों को सतानेवाली अंधी एवं बहरी न्यायव्यवस्था की पोल खोली है। न्याय एवं कानून व्यवस्था सबके लिए समान होने का दावा तो करती है लेकिन आज के इस बाजारीकरण के दौर में वह भी पूँजीपतियों तथा राजनेताओं के हाथों की कठपुतली बनकर रह गयी है। भगवान की झूठी सौगन्ध लेकर कई गुनहगार छुट जाते हैं और सीधे सरल आदिवासियों को न्यायव्यवस्थारुपी मकड़ी के जाले में उलझाया जाता है। जहाँ तारीखों के सिवा कुछ नहीं मिलता। सच को झूठ और झूठ को सच करनेवाली न्यायव्यवस्था पर 'कोर्ट' कविता में प्रहार करते हुए वाहरु सोनवणे कहते हैं,-

" 'भगवान की सौगन्ध / झूठ नहीं बोलूँगा'
कहते- कहते छूट गए / कई गुनहगार
इसी 'कोरट' से / बेगुनाह साबित होकर / और
कानून के माई-बाप / टूटे धागों में
बांधते गांठें / बुनते जाल / मकड़ी के जाले जैसा
दुर्बल जीव - जंतुओं को उलझाने खातिर !
पर कहता है कानून - / 'मैं सबके लिए हूँ।'
दुर्बल जीव नाप नहीं पाते / लम्बाई कानून की
न्यायमूर्ति का दिल कैद है / चौखट में।"[10]

आज कानून की लम्बाई नापना आम-आदमी के बस की बात नहीं रह गयी है, क्योंकि न्यायमूर्ति का दिल चौखट में कैद हो गया है। तात्पर्य न्यायव्यवस्था भ्रष्टाचार से भ्रष्ट हो चुकी है। पूँजीपति, राजनेता साम, दाम, दंड, भेद नीति अपनाकर आदिवासियों को उनके पूरखों के जल, जमीन, जंगल से खेदडकर उन्हें विस्थापन के लिए मजबूर कर रहे हैं। जिससे आदिवासियों को अपने अस्तित्व संकट से जूझना पड़ रहा है। नक्सलवाद इसी अस्तित्व - संकट की उपज है। आदिवासी समाज संगठित होकर हर खतरे के विरुध्द आवाज उठाने के लिए तत्पर है। 'पागल लोगों की पागल कहानी' कविता में भील समाज में पनपती चेतना को स्पष्ट देखा जा सकता है। अतः कवि इंसानियत के पथ पर चलते हुए संगठित समाज के बल पर हर शोषणकारी व्यवस्था की चट्टानों को तोड़कर स्वातंत्र्य तथा समता की समतल जमीन का निर्माण करना चाहता है। समाज को 'आंदोलन का मतलब' समझाते हुए वाहरु सोनवणे कहते हैं,-

"आंदोलन का मतलब
दो-चार दिनों का मेला नहीं होता
ना ही वह नदी में आई बाढ होता है
आंदोलन का मतलब इन्सानियत का स्त्रोत-
सतत विकसित जिसका प्रवाह / प्रवाह वह-
मिट्टी के कण से झर-झर कर

छोटे-बड़े झरनों को / जोड़ता समा लेता है।
यह वही प्रवाह है- जो रुकता नहीं है
पत्थर डालकर भी / रोको, तो नहीं 'रुकता'!
बल खा कर / पहाड़ और चट्टानें तोड़कर
बना लेता राह उबड़-खाबड़ में
समतल महासागर की ओंर / गतिशील होता !"[11]

कवि वाहरु सोनवणे जी का समाज की संगठित शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। जब इंसानियत के लहू से चेतना की चिंगारियाँ भड़क उठेगी तब पहाड़ रुपी शोषणकारी व्यवस्था हिल उठेगी और निश्चित रुप से परिवर्तन होकर रहेगा। इसप्रकार उनकी कविता हमें परिवर्तन से आश्वस्त करती है। वाहरु सोनवणे 'पहाड़ हिलने लगा है' कविता में कहते हैं,

"जो उन लोगों की इन्सानियत
छील - छील खा गये / वे अभी जिन्दा है
और ...../ इन्सानियत के लहू से
चमक रही हैं- / चिंगारियाँ-साम्प्रदायिकता की
पहाड़ हिलने लगा है / उसमें जो आदम दबा है-
वह इंसान है।"[12]

निष्कर्ष :-

आदिवासी समाज जीवन को केंद्र में रखकर काव्य-सृजन करनेवाले कवियों में वाहरु सोनवणे का महत्वपूर्ण योगदान है। वैश्वीकरण की नई अर्थनीतियों ने आदिवासियों को उनके जल, जमीन और जंगल से बेदखल करते हुए उन्हें विस्थापन के लिए विवश किया। इस विवशता तथा अपनी अस्तित्व रक्षा से उपजा विद्रोह 'पहाड़ हिलने लगा है' की कविताओं में स्पष्ट देखा जा सकता है। समाज द्वारा मिले उपेक्षा एवं अपमान के जख़्म, प्राथमिक जरुरतों को पूर्ण करने में ही अपना जीवन खपा रहा आम-आदमी, गाँव और शहर के बीच बढ़ती दूरी, जंगलों का सफाया कर प्राकृतिक संसाधनों की हो रही लूट, पूँजीपति और राजनेताओं की साँठ-गाँठ, पुरुषप्रधान व्यवस्था की शोषण चक्की में पिसती नारी, धार्मिक पाखण्ड एवं अंधविश्वास, भ्रष्ट कानून एवं न्यायव्यवस्था, बढ़ती आर्थिक-सामाजिक विषमता तथा विकास के नाम पर किये जानेवाले विनाश के विरुध्द आवाज उठाती ये कविताएँ इंसानियत के पथ पर चलती हुई संगठित समाज के बल पर पहाड़रुपी शोषणकारी व्यवस्था की जड़ता को हिलाकर सामाजिक समता की समतल भूमि पर अपना कदम रखती है। कुल मिलाकर वाहरु सोनवणे की कविताएँ सामाजिक सरोकारों के साथ अभिन्न रुप से जुड़ी हुई है।

संदर्भ ग्रंथ :-

१. संपा.रमणिका गुप्ता, आदिवासी साहित्य यात्रा, पृ.25
२. वाहरु सोनवणे, पहाड़ हिलने लगा है, प्राक्कथन, पृ.8-9
३. वाहरु सोनवणे, पहाड़ हिलने लगा है, पृ. 61
४. वही, पृ. 18
५. वही, पृ. 29
६. वही, पृ. 74
७. वही, पृ. 34

८. वही, पृ. 19
९. वही, पृ. 21
१०. वही, पृ. 42
११. वही, पृ. 62
१२. वही, पृ. 10